# फुटपाथ पर चिड़िया नाचती है

(राजस्थान साहित्य अकादमी के सुधीन्द्र काव्य पुरस्कार
1983-84 द्वारा पुरस्कृत)

लेखक
भगवतीलाल व्यास

संघी प्रकाशन
जयपुर उदयपुर

# फुटपाथ पर चिड़िया नाचती है

लेखक

**भगवतीलाल व्यास**

मूल्य पच्चीस रुपये मात्र



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के
सहयोग से प्रकाशित

मूल्य—पच्चीस रुपये

प्रकाशक—विजेन्द्र कुमार सघी
सघी प्रकाशन
सालजी सांड का रास्ता,
एस एम एस हाइवे,
जयपुर 302003
शाखा —53, बापू बाजार
उदयपुर 313001

संस्करण—प्रथम 1985
मुद्रक—जयशक्ति प्रिंटर्स
जयपुर 302003

# आमुख

भगवतीलाल व्यास नये कवि नही है, वे पिछले बीस वर्षों से कविता को समर्पित हैं। उन्होने यह कोशिश की है कि कविता को किसी 'रोमांचकारी दृश्य की तरह मनोहारी न बनायें, जिसके नजदीक बहुत थोडे समय खडा रहना ही सम्भव होता है और जो बाद मे सिर्फ आवेश की रंगीन आतिशबाजी की तरह याद रह जाती है।

अपने समय की रोमांचक या क्रुद्ध कविता से भगवतीलाल अपरिचित नही हैं। मैने उनसे यह प्रश्न भी किया है—अपने समय या व्यवस्था पर आक्रमण करते समय आप ज्यादा उद्विग्न या कि नाराज नही होते। भाषा अमूमन अनाक्रामक बनी रहती है। आज की कविता के मिजाज से आप बेखबर तो नही है ? दरसल आप कविता को कहाँ से पकडते है ?

उन्होने कहा—अमूमन कविता लिखने के लिए कोई तैयारी नही करता, कोई खास उत्स भी नही है लेकिन अपमान, अनादर के छोटे बनाने वाले प्रसंग प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। कभी कभी इन घटनाओ के बाद कवितायें भी लिखी गयी है। मैं सम्मान और प्रेम के लिये तरसता हूँ नंद बाबू।

लेकिन हमारी आज की व्यवस्था मैं पूछता हूँ।

वही तो मैं कह रहा हूँ। हमारे जैसे लोगो के लिये सम्मान और प्रेम इसी-लिए तो दुर्लभ है क्योंकि वह व्यवस्था की उन विसंगतियो का हिस्सा है जो बडे छोटे का दु ख देने वाला भेद कायम करने मे सफल हो गयी है। हमारा मान-सम्मान वस्तुओ से जुडा है एक निकम्मी, उपभोक्तावादी, अनालोचनीय संस्कृति से, जहाँ कविता भी व्यर्थ होती नजर आती है इत्यादि, इत्यादि।

इस लम्बी बातचीत के बाद भगवतीलाल व्यास की कवितायें दुबारा पढनी होती हैं क्योंकि वे वैयक्तिक होती हुई भी समय की दुरभिसंधियो को प्रगट करती है। भगवतीलाल की कविता मे सीधे कुछ भी नही होता, कविता मे सीधे-सीधे कुछ भी होना कविता का अस्वीकार है। कविता मे हम इसलिए शिल्प की जरूरत अनुभव करते हैं क्योंकि वह सीधी नही आती, छाया से, प्रतीक से, बिम्ब से, अथ

भंगिमा का विस्तार करती आती है। समय की चालाकी हो या सौम्यता, परिवर्तन की गुनगुनाहट हो या चीख, आदमी का अकेलापन हो या सामूहिकता का दबाव वह कविता में दूसरी तरह आता है। कविता आंतरिक जरूरत होकर आती है और निर्वैयक्तिक नहीं होती। बाद में वह इस अर्थ में निर्वैयक्तिक हो जाती है कि वह सबके लिये हो जाती है, कवि को मुक्त करती हुई और संस्कृति का, सौंदर्य का हिस्सा होती हुई। अच्छी कविता को इन्हीं अर्थों में वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक होना होता है, जो कि यही करना कवि के लिये सबसे मुश्किल होता है। जब मैं भगवतीलाल की बात करता हूँ तो यह नहीं कहता कि वे इस मुश्किल काम को सिद्ध कवियों की तरह कर चुके हैं बल्कि एक स्थूल अर्थ में वे यह प्रयत्न करने लगने हैं कि वे कविता को सांस्कृतिक सरोकार से अलग न करें और ऐसा वे तभी कर सकते हैं जब वैयक्तिक अनुभूतियों को समय और व्यवस्था की उन बेरहमियों से जोड़ दें जो हमारे सबके हिस्से में आ गयी हैं। मैं इस तरह की एक कविता का यहाँ उल्लेख करना चाहता हूँ जो किसी अपमान के बाद लिखी गयी है। इस कविता का अन्त खास तौर पर द्रष्टव्य है जो आहत जिन्दगी के तनावों और आस्था के दर्शन के बीच महत्वपूर्ण हो गया है। कविता प्रारम्भ बहुत मामूली और व्यक्तिगत ढंग से हुआ है—

मैं एक हारा हुआ आदमी हूँ
जो हर बार जीत का अभिनय करता हूँ
और फिर-फिर हारा हुआ
करार दे दिया जाता हूँ

बीच में कवि बहुत सी बातें लिखता है सामान्य सी सपाट और सैद्धान्तिक मसलन—

मगर हारे हुए आदमी का न कोई
वेश होता है न आवेश
मैं अपनी ही आँखों के सामने
बेहयाई ओढ़े खुद को नंगा पाता हूँ

लेकिन अन्त होते होते सहसा आत्म हत्या जैसा विचार और हजार बार हार जाने पर भी जीवन की आस्था और मजबूती जीवन को पकड़ लेती है—

अन्त में मुझे रेल की खिलखिलाती
पटरियां और
गुलमोहर के लाल फूल एक साथ
याद आते हैं

गुलमोहर की चटख लाल रंगो की स्मृति आत्महत्या के विचार को पराजित कर देती है शायद इसलिए कि इस पराजय का स्वीकार हत्यारो की व्यवस्था के सामने घुटने टेक देना है।

भगवतीलाल की ढेर सी कवितायें समय और व्यवस्था के अन्तर्विरोधो को बताती है। इन रचनाओ की शैल्पिक-सरचना एक कहानी की तरह होती है। कविता शुरू होते ही ऐसा लगता है कि कोई मूर्त्त-प्रसग उपस्थित है, जिसके अन्दर ही अन्दर कविता की सवेदनशीलता का फैलाव होना है। कविता की इस कहानी-नुमा बुनावट का नफा नुकसान भगवतीलाल सहते है। नफा यह कि इस तरह कवि और पाठक के बीच एक रिश्ता बना रहता है, कविता सहसा उच्छृंखल नही होती, मर्यादा मे मजे से बधी रहती है। लेकिन नुकसान यह है कि वह बाहर से बधी रहती है, अन्दर से फैलने की ताकत नजर नही आती। उन्मेष भी नजर नही आता। हिस्सो हिस्सो मे दिखाई पडती है—गुम्बज, गवाक्ष, खिडकिया, महरावें इस तरह। कविता की एक अन्विति कमी ही नजर आती है।

मेरी दृष्टि से कविता के बाहरी फैलाव का दोष व्यापक हो गया है क्योकि 'अन्तर्विरोधो का तर्क' समझाने के लिए हमे कविता से बाहर जाना पडता है, बहुत सी स्थितियाँ जाचनी होती हैं, उनके दबाव को कविता का दबाव बनाना पडता है। बहुत सी सामाजिक उथल पुथल, उसका औचित्य अनौचित्य अभाव की शोकाक्त स्थितियाँ हमारे लिए नही होती क्योकि हमारी आस पास की दुनिया सुविधा और सम्पन्नता की होती है। इस दुनिया को छोड कर कगाल और दु ख-कातर दुनिया के पास हम कुछ करुणा और बहुत सी बुद्धि के जरिए पहुँचते हैं और इस क्रम मे दु ख और बेरहमी की लय कविता की लय के साथ प्राय नही बजती। लेकिन कैसा भी हो—बडा हो, छोटा हो, रचनाकार का ससार उसके आस-पास का ही है और उसके सुख दु ख की लय ही उसकी चित्त लय है इसलिए बडी कविता जन के साथ जुडती है, इस तरह वह काल की दहलीज लाँघकर इतिहास-चक्र को गति बनती है।

भगवतीलाल व्यास की रचनाओ म आक्रामक शब्द नही आते। उन्होंने बातचीत मे कहा था कि यह कोई स्ट्रेटेजी नही है और न किसी काव्य शली का हिस्सा है वे आक्रामक होना चाहते हैं। उन्होने कहा यह दरसल उनके स्वभाव का हिस्सा है। इसके चलते वे अपनी रचनाओ मे स्थितियो का जायजा लेते हैं। कविता मे एक तार्किक परिदश्य की रचना करते हैं। इस परिदृश्य के आर पार देखने की स्थिति म जब वे होते हैं तो उनकी कविता भविष्य-वाणी जैसी लगती है।

इस देख पाने की क्रिया मे से वे एक कौशल को जन्म देते हैं जो उनके अध्यापकीय मिजाज से मेल खाता है। इसे 'समझाने का कौशल' कह सकते हैं। कविता म कविता को समझाते हुए, स्पष्ट करते हुए, सादृश्यता की स्थितियाँ बनाते

हुए भगवतीलाल कविता को एस प्रारम्भ करेंगे जैसे बात कहना प्रारम्भ कर रहे हों। फिर समझा रहे हो–देखो ऐसा हो रहा है, अब ऐसा हो गया है, यहाँ तक आ गये हो। उनकी कविता म हड़बड़ी नहीं है इसके विपरीत 'एक समझ के साथ ठहरापन' है। इस तरह की इस सकलन म एक कविता है—'सहानुभूति की आवश्यकता नहीं' और दूसरी 'बस्ती के मुक्त लोगो के लिए'। इस कविता का प्रारम्भ होता है—'मैं गलत नही कह रहा हूँ भाई।' 'भाई' विश्वास में लाने का सम्बोधन है, किसी एक रहस्य को धीरे धीरे खोलने और सवाद मे शुरू करने का पूर्वाभास कराता सम्बोधन। फिर गाँव की रूखी जिदगी की कविता होती है। इस गाँव म कुछ न होने का एहसास कराते हुए लिखा है—

मैं गलत नहीं कह रहा भाई
मटियाये घरो या रेत की नदी
या गाव की सीव को
अभी तक तो कुछ नही हुआ
सिवा इसके कि इसके
इकलौते बरगद तले
एक जजर जीप, फटा झडा
और कर्कश माइक उग आया है

❀

मैं गलत नही कह रहा हूँ भाई
यकीन न हो तो कभी जाकर देख लेना
ये लोग हर लडाई मे हारे हैं
अपने राजा से हारे हुए
अपनी प्रजा से हारे हुए
अपने पेट से हारे हुए
ठेठ से हारे हुए

कुछ छोटी कवितायें जो इस सकलन म है उनकी प्रकृति बडी कविताओ से भिन्न है। यहाँ बडा कथानक नहीं है, बात को सीधे कहना और पूर्वानुभवो से जोड देना ही उनका काम है। अनुभवो की प्रामाणिकता के कारण ये कवितायें

'तक पद्धति' से बची है और साहसिक भी हैं। उनमे कुछ सूक्तियो की तरह लगती हैं।

यह देखने की बात है कि भगवतीलाल व्यास की कविताओ मे वन-वनस्पति, नदी, ताल या कि प्रकृति प्राय आलम्बन नही बनते। वे मानवीय स्थितियो से अपनी कविताओ का सम्पन्न करते है।

किसी कवि पर कोई बात आखरी नही हो सकती। मैं हमेशा यह सोचकर प्रसन्न होता हूँ कि हमारी दुनिया अनेक मोर्चों पर सघपरत है और इसलिए कोई कवि कभी शान्त नही होगा और न पुराना ही कहा जायेगा। समय गुजरने पर उसे कई समीक्षक और भाष्यकार मिलेंगे।

—नन्द चतुर्वेदी

# इन कविताओं के बारे में

"फुटपाथ पर चिड़िया नाचती है" मेरा दूसरा काव्य संकलन है। पहला काव्य संकलन 'शताब्दी निरुत्तर है" 1977 में प्रकाशित हुआ था। आठ वर्ष के अन्तर से प्रकाशित होने वाले इस काव्य-संकलन की कविताएं अपने शिल्प और कथ्य में पूर्ववर्ती कविता संकलन की कविताओं से कितना आगे बढ़ पाई हैं, यह निर्णय करना पाठकों और सुधी समालोचकों का काम है।

एक रचनाकार के नाते मुझे लगता है कि वर्तमान जीवन की बढ़ती हुई जटिलताओं ने जहाँ हमारे संवेदना क्षेत्र को विस्तार दिया है वहाँ अभिव्यक्ति के आग्रहों में भी परिवर्तन उपस्थित किया है। पहले जहाँ दृष्टि व्यक्ति संवेदनाओं पर ही टिक कर रह जाती थी आज उसकी यात्रा समाज तक बढ़ सकी है। आज का रचनाकार सामाजिक स्तर पर ही इन संवेदनाओं की अनुभूति करता है और समाज के संदर्भ में ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। मैंने प्रयत्न किया है कि इन कविताओं के माध्यम से मैं वर्तमान जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं और विषमताओं को सृजनात्मक स्तर पर पहचान सकूं तथा अपने पाठकों तक इस पहचान को पहुंचा सकूं।

पाण्डुलिपी रूप में जब यह पुस्तक राजस्थान साहित्य अकादमी से सुधीन्द्र काव्य पुरस्कार द्वारा पुरस्कृत हुई थी तब सोचा था जल्दी ही छप जाएगी, किन्तु काव्य संकलनों के प्रति जैसा अन्यमनस्क भाव हिन्दी प्रकाशन जगत् में है उससे यह तत्काल सम्भव न हो सका। इस वर्ष राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर ने अपनी पाण्डुलिपि प्रकाशन योजना के तहत इस संकलन के प्रकाशन के निमित्त दो हजार रुपये का अनुदान देना स्वीकार किया तभी इसका प्रकाशन भी सम्भव हो सका है। मैं अकादमी के प्रति इस अनुग्रह के लिए आभारी हूँ।

आदरणीय नन्द बाबू (प्रो नन्द चतुर्वेदी, वरिष्ठ हिन्दी कवि तथा समीक्षक) ने कई दिन लगा कर संकलन की एक एक कविता को पढ़ा तथा प्रस्तुति को यथा सम्भव प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अपने अमूल्य सुझाव दिए। यही नहीं, नन्द बाबू ने मेरे रचनाकार तथा रचनाकर्म को विश्लेषित कर एक आलेख (जो इस संकलन

मे है) तैयार करने का श्रम साध्य काय भी बडो सहजता से कर दिया। यह सब उनकी आत्मीयता तथा स्नेह का परिचायक है। इसके लिए आभार या कृतज्ञता जैसे शब्दो का प्रयोग मुझे रुचिकर नही लगता।

भाई विजेन्द्र मघी को धयवाद जिन्होंने बहुत कम समय मे यह सकलन छाप देने का न केवल वायदा किया बल्कि उसे पूरा भी कर दिखाया।

यह काव्य सकलन मैं अपने सभी पाठको, प्रशसका, आलोचको, मित्रा, सहधर्मिया और साथिया के हाथा मे विनयपूवक सौपना चाहता हू जिनकी प्रेरणा कही न कही इन कविताओ म मुखर हुई है।

महा शिव रात्रि
18 फरवरी, 1985

—भगवतीलाल व्यास

# क्रम

प्रार्थना करो

फिर हम अंधेरो के हवाले
कर दिये गए समारोह पूर्वक
अगर मनो के आख होती
तो वे देखते हमारी दुर्दान्त
जिजीविषा।
उजालो के व्यग्य चुभते रहे
पूरे सफर मे
जबकि लैम्प पोस्ट का दिया
अपनी जगह मे हिला तक न था
यह भी कैसी विवशता है कि
आदमी और उसका प्यार
अलग-अलग रास्तो पर
चलते हैं।
*
मुद्रा और मुद्राहीनता के
बीच का फासला
इतना कम नही हुआ था कभी।
जब चिडियाए।
कहा बनाएगी अपना घोसला
यहा हर रोशनदान मे
कम्प्यूटर लगा है
रेत मे सीपियो के खेल
कौन खेलेगा अब
तमाम गर्भस्थ शिशुओ के हाथ मे

थमा दिये गए हैं कुछ झण्डे
और चन्द नारे
मा जुलूस की शक्ल मे
सडक पार कर रही है
और वाप किसी फटेहाल
ट्रक ड्राइवर की जेव मे
प्रजातन्त्र सघान कर रहा है।
*
स्वप्न वही तो नही है
जिसे हम सवसे
यहा तक कि
अपने आपसे भी कट कर देखते हैं।
दरअसल हमने
सोचन की शुरूआत ही गलत की थी
कि हम काट लेंगे हिमालय को
बघनखो से
बघनखे आदमी को नृसिंह
भले ही बना दें
भले ही वे किसी हिरण्यकश्यप को
"सवक" भी सिखा दे
पर वे किसी का अग्नि कवच
नही बन सक्ते।
दर्शकगण !
इस वार प्रहलाद के लिए
प्रार्थना करो
सिफ प्रार्थना ।



# आज रामदीन बहुत खुश है

आज रामदीन बहुत खुश है
कि समारोह मे उपस्थिति की बदौलत
उसके पास भी एक जोडी
डराऊ आखें और तीखे नाखून मौजूद है।
दरअसल वह तो चौक वाली सभा
को कोई धार्मिक उत्सव समझ कर
गया था
यह बात दूसरी है कि तमाम
लोगो की शुभकामनाओ के बावजूद भी
सभा एक आश्वासन समारोह मे
बदल गई थी।

*

वे सब लोग वहा कुछ भी
न करने को इकट्ठे हुए थे
क्योंकि जो कुछ वे करना चाहते थे
वह उनके बिना इकट्ठे हुए भी
हो सकता था
फिर भी वे सब लोग
होते हुए को अपनी उपस्थिति का
परिणाम बताने मे
इतने आत्मलीन हो गए
कि परस्पर एक दूसरे की
बात काटने लगे।
रामदीन को लगा कि ये लोग

बातें काटते-काटते
आदमियो को काटने लगेंगे ।
उसने कुछ लोगो को सचेता कि
"चलो, समारोह से भाग चले ।"
मगर कोई टस से मस न हुआ ।
*
आखिर सभापतिनुमा
एक आदमी उठा और उसने
लोगो को काम बाटना शुरू किया
रामदीन के हिस्से मे
दीवारो पर लिखे पुराने इश्तहार पोतने
और उनकी जगह नये
इश्तहार लिखने का काम आया ।
उसने सभापति से गुज़ारिश की—
'हुजूर ! इस काम मे जान का खतरा है ।"
सभापति मुस्कुराये और झोने से
"कुछ' निकाल कर
रामदीन की ओर बढा दिया ।
रामदीन इस "कुछ" को पाकर
सब कुछ पा लेने की मुद्रा मे
घर आ गया ।
सचमुच,
रामदीन आज बहुत खुश है ।

□

## रोशनी का चरित्र

अच्छा है कभी-कभी यों ही
सब रोशनियां बन्द हो जाएँ
मिट जाए आकृतियों के सूक्ष्म द्वन्द्व
आदमी बस आदमी लगे
उसकी अलग नाक, आँख, कान और
मूछों के बावजूद
बारीकियों में समता कहां है
ममता वहां है जहां
चकाचौंध नहीं है।
चारों ओर घिरे

*

धुंधले अनचीन्हे आकारों के बीच
मैं होता हूं
तुम होती हो
हमारे बीच कुछ होता है
या कुछ या कुछ नहीं होता
यही कुछ या कुछ नहीं
सही कविता होती है
तमाम सही कविताओं का जन्म
सूचिभेद्य अन्धकारों में होता है
रोशनी वक्तव्यों के लिए छोड़ दो
और अन्धकार से प्रगाढ़ मैत्री के लिए भी।

*

शहर मे जब–जब
रोशनी चली जाती है
बिजली वालो की हडताल से या
बिजली घर की खराबी से
मुझे गाव याद आता है
मेरा मन आत्मीय अन्धेरे की
याद से भर जाता है
मै ईश्वर से प्रार्थना करता हू
प्रभो ! मेरे गाव को विद्युतमय
होने से बचाओ
इस आख मिचौनी और
शरारत के लिए
शहर, कस्बा या फिर
विधायकजी का गाव काफी है।
मेरा गाव अधेरे मे रहने दो
अब रोशनी का चरित्र
विश्वसनीय नही रह गया है।

□

## मुर्गा-सत्य

बडा मुर्गा ठीक आधी रात को
बाग देता है कि सवेरा हो गया है
छुटभैया मुर्ग अपनी कटी हुई कलगी
बनावटी उत्साह से उचका कर
दोहराता है—
हां, सवेरा हो गया है
और फिर
बडे मुर्गे का स्तुतिगान आरम्भ हो जाता है
जिसका अन्तरा छुटभैया मुर्ग
हर बार चौगुने जोश से दोहराता है
शेष पंक्तियां पिछलग्गू मुर्ग-समूह
अलौकिक भक्तिभाव से गाता है।
आसमान से तारे यह
कौतुक देखकर हंसते हैं।
*
कहने को तो ये स्वयं को
सूरज का साझीदार कहते हैं
मगर जब सूर्य अपनी ऊंची आवाज में
इन्हें बुलाता है तो
ये बेचारे अपने-अपने
दडबों में दुबक रहते हैं।
इन्हें क्या पता कि सूर्य किस रंग
और आकृति का होता है
और किधर से उगता है ?

इनके लिए सूर्य का रंग लाल
इसलिए है कि दादा मुर्ग की
कलगी लाल है
सूर्य गोल इसलिए है कि
बाग देते समय दादा मुर्ग का कंठ
बिलकुल गोलाकृति हो जाता है
सूर्य एक विशेष दिशा से
इसलिए उगता है कि दादा मुर्ग
तुरही सी अपनी दुम उठाये
उधर ही बागता है।
*
छुटभैयाओं ने यह भी प्रचारित
कर रखा है कि कभी सूरज ने
दादा मुर्ग से रोशनी कर्ज ली थी
और आज तक नहीं लौटाई
दादा मुर्ग कितनी शालीनता से
हर सुबह अपनी दी हुई चीज
वापस मांगते हैं
लोग कितने मूर्ख हैं जो कहते हैं—
"मुर्गे बागते हैं।"

□

## राजा का घोड़ा

तुमने और हमने
साथ-साथ जो शब्द बोये थे
अगर वे सहसा उग आए तो
क्या होगा ?
मैं उस आदमी को जानता हूँ
जिसका कोई चेहरा नहीं है
यानी हर चेहरा
उसी का चेहरा लगता है
अगर वह सहसा
किसी एक चेहरे का होकर
रह जाये तो क्या हो ?
तुम इस बात को कब समझोगे
कि राजा जिस घोड़े पर बैठा है
उसका "पलाण" ही नहीं
उसके पाँव भी
स्वतः स्वर्ण मण्डित हो जाते हैं।
अगर सहसा कभी वह घोड़ा
अपना पलाण फेंक कर
मान भटकता हुआ
राजा से जवाब [illegible]
तो क्या हो ?
मगर तुम [illegible] ?
अक्सर [illegible] है कि
[illegible]

जिन्दगी मे ही उग आयें
आदमी अपने लिए कोई एक
चेहरा चुन ले और
घोडा पूँछ हिलाने की बजाय
पलाण फेंक देने मे
अधिक सुरक्षा महसूस करने लगे ।



## शर्तनामे के खिलाफ

मैं तुम्हे अच्छा लगू
इसके लिए मुझे क्या करना होगा ?
मेरे इस प्रश्न के उत्तर मे
तुम्हारा शर्तनामा मेरे सामने है
जिसका सार यह है कि
मुझे अब तुम्हारी आखो से देखना होगा
तुम्हारे कानो से सुनना होगा
तुम्हारी जुबान से बोलना होगा
और तुम्हारी अगलियो से छूना होगा
इसका अर्थ यह हुआ कि
तुम मुझे उन्नीस सौ चालीस का
भूगोल पढाना चाहते हो
तुम यह जान जाते तो
अच्छा होता कि वह भूगोल अब
इतिहास बन चुका है
और यह भी कि हर इतिहास
आग होता है
हाथीदात का महल नही।
तुम्हारी यह इच्छा भी कितनी बचकानी है
कि मैं अपने बचाव के लिए
चारो ओर चूने की खोल पहन लूँ
और समुद्र की हर गुहार अनसुनी करता रहू
तुम मुझे मोती बनाकर अपनी
अगूठी मे जडना चाहते हो भले ही लेकिन
आखिर तुम आदमी और घोघे मे

फक करना कब सीखोगे ?
तुम भूल जाते हो कि अब
आकाश काफी बडा हो गया है
जिसमे सुर्य उगना है तो अस्त भी होता है
हवा की सख्त हिदायत है कि
एक आदमी दूसरे के साथ
आदमियत से पेश आये
क्योकि आदमी और आदमी के
बीच का यह रिश्ता और सब
रिश्तो से बडा है ।
ताज्जुब है तुम अब भी चाहते हो
कि मैं तुम्हारी समाज-व्याकरण
के वे अध्याय कठस्थ कर लू
जिनमे एक आदमी विशेषण होता है
और कई आदमी जातिवाचक सज्ञा ।
मुझे क्षमा करना ।
मैं तुम्हारी आखो को अच्छा
नही लगना चाहता
हालवत्ता मैं कोशिश
करुगा कि अपनी ही
आखो को अच्छा
लगता रहू ।

□



कभी-कभी
यह बेहद जरूरी हो जाता है कि
हम आग को छूकर देखें
बावजूद हमारी इस जानकारी के
कि आग का काम जलाना है
कभी-कभी एक ऊष्मा
*
भरे अनुभव के लिए
लोग कितनी बेचैनियां
झेल जाते हैं।
वे इतिहास बनने के लिए होती हैं
हम उन्हें अतीत न बनने दें।
*
कभी-कभी फूल-सम्बन्धों में
सांप भी हाथ छू सकते हैं
अच्छा हो कि हम यह जान लें
सांप हमारे अन्दर होता है
बाहर अगर कुछ होता भी है तो
महज एक सर्पाभास।
*
कभी-कभी एक बीज
नमी के अभाव में जमींदोज
हो जाता है
हम अपने अन्दर देखें
कहीं बादल
वहीं तो कैद नहीं है।

## हीरा-कोयला

एक दिन मुझे लगा कि मेरी
आंखों की जगह दांत उग आए हैं
और जो चीज मुझे देखनी
चाहिए उसे मैं चबाने लगा हूं
मसलन पड़ोसी के गमले का
अधखिला गुलाब या
सड़क पर अपने आगे
चल रही महिला की अधनंगी पीठ।
*
दूसरे दिन
मेरी हथेलियों में आंखें उग आईं
और अपना काम निकलवाने के
लिए आए आदमी द्वारा
टेबल के नीचे सरकाये गये
नोटों को मैंने देख लिया कि
वे कितने हैं
सिंदूरी हैं या हरे हैं
खरे हैं या खोटे हैं।
*
तीसरे दिन मैंने महसूसा
मेरा मुंह पेट हो गया है
सपाट और चिकना
विराट और विशाल

न खुलता है न बोलता है
हर अपमानजनक यहाँ तक कि
तिलमिला देने वाले क्षणो मे
भी तटस्थ
शान्त । महाकाय । महाभाव

*

और चौथे दिन
लोगो ने कहना शुरू कर दिया
"भई क्या आदमी है,
हीरा है, हीरा।"
सचमुच कोयला रहना
कितना कठिन है आजकल।



## सहानुभूति की आवश्यकता नहीं

कोई भी कहानी गढ लेना तुम
मेरे दुघ मु हे
वर्तमान के अतीत हो जाने की।
इसमे मलाल की बात ही क्या है,
किस्सागोई अब तुम्हारा शौ. नही
व्यवसाय बन गया है।
उस दिन मने कहा था—
'देखो, कुछ दिनो मे ये पतगें
नीचे उतर आएगी।"
तुमने सुधारा था–
"आएगी' नही उतर गई हैं।"
और तुम ढीली डोर की ओर
एक औपचारिक दृष्टि
फक कर मुस्करा दिए थे।
तुम्हारी मुस्कान का लोहा
मैं अगले दिन
तब मान गया जब
पतगें तो नीचे नही आई थी
किन्तु उनके ऊपर का
आसमान गायब हो गया था।
*
तक नही करूगा
क्योकि तुमने कह दिया है
वह "न्याय सगत" नही होता।
केवल तुम्हारी सूचनार्थ

[

निवेदन भर करना चाहूगा—
मेरे सपनो के शैशव ने
विदूपको की तरह
कूल्हे मटकाना शुरू कर दिया है
उस रागिनी की ताल पर
जिसे तुम्हारे साजिन्दे बजा रहे हैं
श्रौर इस तरह मेरे लिए श्राज
एक श्रौर उपनिषद
रद्दी मे बेच देने काबिल
हो गया है ।
मै जानता हू तुम्हारे लिए यह
सूचना एक लावारिस
गिलहरी की कुचल जाने से हुई मौत से
श्रधिक मायने नही रखती ।

*

वर्षो पहले मै
"नकार' को सराहा करता था
पर जबसे गली के
इस मुहाने पर
बडे-बडे गड्ढे मिलने लगे हैं
श्रौर उन गड्ढो को गहराने मे
लगी गैंतिया श्रौर सब्बलें
कहने लगी है—
"ये सब स्वीकार के लिए है !"
न जाने कैसा तो लगने
लगा है ।

जो करता है
इन गड्ढो मे
खुद लेट कर मिट्टी श्रोढ लू
ताकि गली के बीचो बीच खडा
न लौटने वाला रथ
एक बारगी यह मुहाना
पार कर ले ।
*
सूरज श्राज भी उसी तरह उगा
श्रागन खखारने की ध्वनियो
से भर गया—
मुझे लगा कि श्रब कुछ होने
वाला है
पर हवा की सुई बराबर
श्रपना काम करती रही
श्रौर कुछ नही हुश्रा ।
लोग बाग श्रपने श्रपने काम
पर चले गये
बच्चे स्कूल श्रौर महिलाए
दोपहर की सुपारी
बातो के सरोते मे
काटने लगी
इस बीच उल्लेखनीय
कुछ नही हुश्रा —
सिवा इसके कि
एक चितकबरी बिल्ली ने

चिडिया के सद्यजात बच्चो मे
से एक को दबोच लिया
और जीने मे रखे टटे
कनस्तर की आड मे
चली गई
दूसरे दिन घोसले की
जगह इश्तहार नुमा एक
तख्ती लटक रही थी
सहानुभूति की आवश्यकता
नही—"



# बस्ती के सुप्त लोगों के लिए

मैं गलत नहीं कह रहा हूं भाई।
इस खन्दक में हारे हुए लोग रहते हैं
रात के डरावनेपन का कोलाज ये लोग
किसी सूर्योदय की प्रतीक्षा नहीं हैं
तुम अपने वहम से अब तो निश्चिन्त
हो जाओ कि रात के रगों का
मिजाज समझने में तुमसे
कोई भूल हुई है
रात जब करवट बदलती है
तब इसी तरह का भरम
अच्छे-अच्छे ऋषि-मुनियों
और पीर औलियाओं तक को हुआ करता है
फिर कुछ ऐसा होता है
कि बस्ती की इक्की-दुक्की
लालटेन जबरन बुझा दी जाती है
मैं गलत नहीं कह रहा हूं भाई
अब इस बस्ती में सिर्फ
कुछ बुझी लालटेनें टंगी हैं
और रात करवट लेकर
फिर निंदियाने लगी है।
बुझी लालटेनों की तरह
ये बुझे-बुझे और धुंआये आकार
मधुमक्खियां भी हो सकते थे
ये लोग तितलियां हो सकते थे

कठ फोडवा हो सकते थे
हिरण और बाघ होकर
जगल मे निद्वन्द्व विचर सकते थे
मगर इन्हे जगल का नियम रास नही आया
और ये बस्तियो का
चमगादडी जीवन जीने के लिए
अभिशप्त हो गए
फिर धीरे-धीरे अभ्यस्त हो गए
अधिक हुआ तो खेत-खलिहानो से
सटी रेत की नदी मे
शुतुमु ग जैसे थिरक-थिरक कर
दुबक आये
या गाव की सीव पर
'हुआ-हुआ" करते हुए
डोलते रहे
मौसम-बेमौसम ।
मैं गलत नही कह रहा हू भाई
मटियाये घरो या रेत की नदी
या गाव की सीव को
अभी तक तो कुछ नही हुआ
सिवा इसके कि इसके
इकलौते बरगद तले
एक जर्जर जीर्ण फटा झण्डा
और बसरा माइक उग आया है ।
मैं गलत नही कह रहा हू भाई
यकीन न हो तो कभी जाकर देख आना

ये लोग हर लड़ाई मे हारे हैं
अपने राजा मे हारे हुए
अपनी प्रजा से हारे हुए
अपने पेट से हारे हुए
ठेठ से हारे हुए
ये लोग अब शायद अपने आपसे
लड़ रहे हैं
इनकी पकड इतनी ढीली है कि
जैसे इनके हाथ मे
गिरेबान न होकर
गीता की पोथी हो ।
मैं गलत नही कह रहा हू भाई
इनकी हर लड़ाई
मुक्ति के लिए होती है
विजय के लिए नही ।
रात और सवेर के बोध से मुक्त
सियार और शेर के बोध से मुक्त
इस बस्ती मे बोध मुक्त लोग रहते है
इन्हे मुक्ति बोध से डर लगता है
और उसे अतीत की कब्र
मैं कबका दफना चुके हैं ।
मैं गलत नही कह रहा हू भाई !

श्री [illegible] नागर

## अप्रैल उत्तरार्द्ध की एक आदिवासी साँझ

उतरी है साझ फिर
आकाशी अटारी से
पहाडो की सीढी पर पाव धर
ये नगे पहाड
ऊटो के काफिलो जसे
झडे पत्ते पेड उन पर
खडे एसे
बाल ज्यो उड जाये पूरे बदन के
सिवा तीखी और नुकीली पीठ के
दीठ के विस्तार तक
बौनी दिशाए मौन
ज्यो सवेदना सी
कभी अपने युवा-क्षण मे
ठाठें मारती, फुत्कारती
यह पहाडी नदी
लेटी इस तरह निस्पद
अन्तिम क्षण गिने
ज्यो रोगिणी कोई

*

खलिहान के चकफेर मे
चक्कर लगा दिन भर
थक ये गऊआये पाव
रह-रह पूछते हैं
और कितना और ?

हाथ की सटी सभाले
एक ममता प्राण
थूक अपना गटक कर
टिचकारता कहता–
सूरज ढले तक और पुत्रा
सूरज ढले तक और ।
और वह जो छोर दिखता है
यहा से धूल धूसर
लोग कहते बन रहा है
वहा कोई बाँध
जिस पर कर मजूरी
लौटते कुछ पाव नंगे
हाथ मे लेकर कुदाली
माथ पर धर कर तगारी
पेंदा बिलकता जिसका
विदा होते सूय को यह
रोशनाई लाल
माडती है थके चेहरो पर
अचानक फिर कई सवाल
कि ठेकेदार ने कम
कर दिये हैं दस जने
कल काम पर
दस जनो का सूय
कल किस दिशा से ऊगे ?
है नही उतर किसी के पास ।
*

घुश्रा उठता है
टपरियो से, कुछ यहा से, कुछ वहा से
मसमसाये श्रधजले कण्डे
सिकी श्रौर श्रधसिकी सब
रोटियो की गन्ध
पूरी पहाडी पर फैलती है
श्रौर लगता है कि जसे
श्रभी थोडी देर मे
सुलगने लग जायेगी
पूरी पहाडी भूख से
किन्तु यह लगना कभी पूरा नही होता
काश – यह होता ।
प्रति साझ ऐसे ही घुश्रा होता शात
शान्त होती पेट की वह श्राग
चाद रीती हडिया सा
इसी तरह टँग जाता रोज
इससे कुछ श्रधिक नही
हुश्रा इस पहाडी पर श्रौर ।
पीपल के दूध सी
गँधाती देहयष्टि श्रादिम यह
श्रल्लहडता निरावृत
श्रपने मे मगन श्रौर
समय के सर्प से निश्चिन्त
रेगता जो बगल मे उसके
ऐसी निर्वाक दृष्टि
श्रौर कहा पाश्रोगे ?

ठहरो कुछ क्षण
कुछ पल बियावनो मे
फूस के मचानो मे
इस सूने कुए पर लगे टूए
जर्जर रहट की पाटी पर
बैठ कर लिखो कोई महाकाव्य
अपना यह धूप का चश्मा
अब तो उतारो
देखो तो, यहा कही
काच की किरचें नही बिखरी हैं
सब ओर माटी ही माटी है
श्यामल कोमल मनुहार भरी
माटी यह चुभन देगी
अलबत्ता तुम्हारे अतम
को अपने रग मे रग लेगी
जो तुम्हें पसन्द नही
तुम्हार काव्य शास्त्र म
माटी का छन्द नही
इससे क पायेगा
यह तो उतरी है साझ
इस बस्ती पर
बाझ नही
तुम नही लिखोगे तो
कोई और लिख जायेगा ।

□

## जिबह और तमाचे के बाद

कोई मेमना दो बार जिबह करने के लिए
होता है क्या ?
फिर ये लोग इसकी गर्दन को
इतनी सावधानी से क्या टटोल रहे हैं
जबकि गर्दन जैसी भी है
शुरू से अपनी जगह पर है
जिबह के बाद पछतावा न हो
और यह लगे कि सौदा घाटे का रहा
इसलिए शायद यह बहुत जरूरी है
जिबह से पहले गर्दन और
जिस्म को अच्छी तरह
देख-परख लिया जाय ।

*

यह भी कैसा संयोग है
तुम्हें सजा देने के लिए
मुकर्रर किया गया है और
मुझे सजा पाने के लिए
तुम मेरा गाल सहलाते हुए
मन ही मन उस कोण और
दूरी की कल्पना कर रहे हो
जहां से तुम्हारा सहलाने वाला हाथ
पूरी ताकत के साथ उठेगा
तुम्हारी अंगुलियां अपनी छाप
छोड़ जाएंगी मेरे गाल पर

ग्रौर तमाश बीन लोग
इस छाप मे तुम्हारी
मर्दानगी का इतिहास पढेंगे
मजलिसो मे काफी देर तक
चर्चा हुग्रा करेगी
तुम्हारे जोरदार तमाचे की
फिर धीरे-धीरे लोग
भूल जाएगे मेरे गाल ग्रौर
तुम्हारी ग्र गुलियो के
निशानो को ।
ठीक उसी तरह जैसे वे
भूल गए हैं उस मेमने की
कातर चीखो को
जिसके लहू की एक बूद
ग्रब भी तुम्हारे नाखून पर मौजूद है
सच,
ऐसा ही होता है
हर जिबह ग्रौर तमाचे के बाद ।



# मेरे सीने में एक घाव है

मेरे सीने में एक घाव है
यह सुबह शाम टीसता है
टीसना घाव का स्वभाव है
*
तुम जब चाहते हो
इस घाव को कुरेद देते हो
कुरेदना तुम्हारा स्वभाव है, एक बात पूछूँ -
क्या तुम्हारे सीने में कोई घाव है ?
*
मैं नहीं जानता
मेरे सीने में घाव कब हुआ
माँ कहती है इसका एक इतिहास है
पर सामने सिर्फ इसका भूगोल है
भूगोल के साथ मुश्किल यह
रहती है कि हर कोई उसे
इसे छू सकता है
जैसे तुम और मेरा घाव
•
तुम्हें याद होगा जब मैं
[illegible]
[illegible]
[illegible] के उस पार ?
[illegible]
[illegible]

यत्तीमो मुख सापेक्ष होती है
जिस मुह मे लगती है उसकी बात कहती है
*
जब मैने अपनी बेटी के
ब्याह की बात चलाई तो
सुनना पडा मेरी जेब
"बीमार" है
मैने कहा ब्याह लडकी का
होना है "जेब" का नही
तुम मत्रदृष्टा की तरह
बुदबुदाये थे—
"इससे कोई फरक नही पडता
बीमारी बुरी चीज है
खासकर जेब की।"
*
जब मै मारे भूख के तुम्हारे
दरवाजे पीटने लगा तो
अन्दर से आवाज आई
'भूख का इलाज सरकार है।"
यह आवाज भी तुम्हारी ही थी
क्योकि यह पिछली दो
आवाजो से भिन्न नही थी
अलग-अलग प्रसगो पर
एकसी आवाजें निकालना
तुम्हारा शगल है
*

# मेरे सीने मे एक घाव है

मेरे सीने मे एक घाव है
यह सुबह शाम टीसता है
टीसना घाव का स्वभाव है
*
तुम जब चाहते हो
इस घाव को कुरेद देते हो
कुरेदना तुम्हारा स्वभाव है, एक बात पूछूं –
क्या तुम्हारे सीने मे कोई घाव है ?
*
मैं नही जानता
मेरे सीने मे घाव कब हुआ
मा कहती है इसका एक इतिहास है
मेरे सामने सिर्फ इसका भूगोल है
भूगोल के साथ सहूलियत यह
रहती है कि हर कोई उसे
देख छू सकता है
जैसे तुम और मेरा घाव
*
तुम्हें याद होगा जब मैं
अपने बेटे को नौकरी के लिए
तुम्हारे पास लाया
तो टेबल के उस पार रखी
एक प्लेटो ने कहा था
इसकी "शिक्षा" बेकार है

बत्तीसी मुख सापेक्ष होती है
जिस मुह मे लगती है उसकी बात कहती है
*
जब मैंने अपनी बेटी के
ब्याह की बात चलाई तो
सुनना पड़ा मेरी जेब
"बीमार" है
मैंने कहा ब्याह लड़की का
होना है "जेब" का नही
तुम मन्त्रदृष्टा की तरह
बुदबुदाये थे—
"इससे कोई फरक नही पड़ता
बीमारी बुरी चीज है
खासकर जेब की।"
*
जब मैं मारे भूख के तुम्हारे
दरवाजे पीटने लगा तो
अन्दर से आवाज आई
"भूख का इलाज सरकार है।"
यह आवाज भी तुम्हारी ही थी
क्योंकि यह पिछली दो
आवाजो से भिन्न नही थी
अलग-अलग प्रसगो पर
एकसी आवाजें निकालना
तुम्हारा शगल है
*

मुझे बहुत पहले ही अंदेशा था
कि तुम मेरे सीने मे
घाव वाली जगह जानते हो
मगर महत्वपूर्ण यह है कि
अब मै तुम्हारी हर
आवाज पहचान गया हू ।



## तमाशा

मैं उन लोगों की बात नहीं करता
जो सूर्य की पीठ को हिमखण्ड मानते हैं
यह वक्तव्य उन लोगों से
सम्बन्धित है जिन्हें
गोद-गोद कर
गुनगुने नमकीन पानी के
देग में छोड़ दिया गया है
फूलों का स्वप्न देखने के लिए।

*

कुछ लोग देग के कगार पर
खड़े होकर
तड़पती "मछलियों" का
एक और तमाशा देख रहे हैं
वे इस बात का पुख्ता प्रबन्ध
कर चुके हैं कि
तमाशा खत्म होने तक
सूरज निरन्तर विपरीत
दिशा में देखता रहे।



# फुटपाथ पर चिड़िया नाचती है

फुटपाथ पर चिडिया नाचती है
यह जो चिडिया है
इसे एक चालाक आदमी नचा रहा है
उसने एक अखबार बिछा रखा है
अखबार के नीचे गेहू के दाने हैं
(या दानो का भरम)
चिडिया इस उम्मीद मे नाच रही है कि
ये दाने उसी के लिए हैं
*
असलियत या तो अखबार जानता है
या वह चालाक आदमी
तमाशबीन लोगो का वास्ता केवल
चिडिया के नाच से है
अखबार के पास जाकर
कुछ मन्त्र सा पढता है
और चिडिया दुगुने वेग से
नाचने लगती है
भीड ताली बजाती है
और पैसा फेंकती है
चालाक आदमी दोनो
बटोर लेता है
फिर चिडिया को पिंजरे मे
और अखबार को झोले मे

डालकर दूसरे "शो" की तैयारी
मे चल देता है ।

*

राजपथ पर मोटर दौडती है
यह जो मोटर है
इसे एक छोटा आदमी चला रहा है
मगर मोटर बडे आदमी की है
यह आदमी ज्यादा चालाक है
इसलिए मोटर के नीचे अखबार
नही रखता
अखबार के नीचे मोटर रखता है
यह मोटर और चिडिया का फर्क
समझता है
गेहू के दानो की जगह
यह मोटर मे हमेशा
पूरिया का कनस्तर रखता है
जिधर से मोटर गुजरती है
वातावरण पुडीमय हो जाता है
लोगो की जीभ अनायास
होठो पर फिरने लगती है
पर मोटर नही रुकती
इसका गन्तव्य लोगो की भूख नही
सभा भवन मे सजी कुर्सी है
उत्कठित लोग अपना ,स्वाद जीभ
मुह मे रख लेते है
और अपने-अपने काम पर चले जाते हैं । □

## सम्बन्ध

कई बार ऐसा होता है
कि दूर से चीजें बहुत
साफ नजर आती है
मगर ज्यो-ज्यो हम
चीजो के करीब होते हैं
आकृतिया धु धलाती हैं
जैसे सम्बन्ध
कोई भी—
पिता, माँ, भाई अथवा दोस्त ।
दूर से—
एक सिरे पर व्यक्ति होता है
दूसरे पर सम्बोधन
और बीच मे सुरक्षित रहता है
सम्बन्ध ।
मगर ज्योही हम नजदीक आते हैं—
व्यक्ति और सम्बोधन के
बीच का सेतु टूट जाता है,
एक अव्यक्त रिक्तता छोड कर ।
तब हम देखते हैं कि
अनमनेपन का दैत्य
किस तरह हवा की
सारी मिठास लूट जाता है ।



## मौसम

मौसम बहुत उदास था उस रोज
और उसका उदास होना वाजिब भी था
भूख और उदासी के शाश्वत सम्बन्ध
की व्याख्या सा वह भटक रहा था
उसका नितान्त उतरा हुआ चेहरा देखकर
जगलो ने कहा
हम तुम्हे ईधन देंगे
रोटी बना लो।
मेघो ने कहा
हम तुम्हारे लिए पानी भर देंगे
नहा लो।
हवा ने कहा मैं तुम्हे
गहरी नीद सुला दूगी
और तुम्हारी उदासी पलक झपकते
उतर जाएगी।
बेचारी हवा को उदासी और
नीद की अनबन का पता तक न था
सबकी सुनता रहा मौसम
और चलता रहा अपने कदमो मे
मन-मन के पत्थर बाधे
खेत की मेड पर एक
एक किसान अपनी दोपहरी काट रहा था
उसने आवाज लगाई
ए भाई मौसम!

इधर ग्राग्रो
मेरे पास दो रोटिया रची हैं
खालो ग्रौर सोजाग्रो
दोपहरी ढले मौसम
मेड की खुरदरी घास पर लेट रहा था
ग्रौर किसान ग्रपना
बचा काम समेट [illegible]ा था
लोगों ने देखा
मौसम के सिरहाने की ग्रोर
एक प्रसन्न वदन
फूल खिल गया है
ग्रब तुम तो नहीं पूछोगे
वह फूल किसने खिलाया था ?



## मनुष्य का मर्म

जिन्दगी एक ठहरी हुई झील
हो गई है आज कल
न हो तो कोई कंकड़ ही फेंको
कुछ तो गुनगुनाहट हो
इस सन्नाटे में
बहुत मुमकिन है
एक कंकर से कुछ न हो
तब दूसरा और तीसरा कंकड़
दुगुने और तिगुने जोश में फेंको ।
कमल की खेती ठहरे हुए
जल में भी हो सकती है
मगर बहते पानी की बात और है ।
सुनो—
भागीरथ मूर्ख नहीं थे,
जितना समय उन्होंने गंगा को
लाने में लगाया था
उससे आधे समय
वे एक विशाल झील खोद सकते थे
मगर उन्होंने वैसा नहीं किया
वे नदी और झील का फर्क जानते थे
मनुष्य का मर्म पहचानते थे ।



## पत्थर सुनते हैं

जल जब बहरा हो जाता है
पत्थर सुनने लगते हैं
ऐसा हुआ था एक बार कि
समुद्र घोष से भी
ऊंचे सुर
अनुनय विनय में भीगे
जल सतह पर
बिखरते रहे अविरल
मगर कोई सेतु न बना
तभी पास पड़ा एक
पत्थर पसीज उठा
और स्वयं कूद पड़ा
उस अतल तल में
सहम गया समुद्र
टूट गई जड़ता
पत्थर की प्रभुता
अपने सम्पूर्ण विराट को
दैन्य से बु ारती
नत मस्तक अभ्यर्थना
जल जब बहरा हो जाता है
पत्थर ही सुनते हैं
प्रार्थना ?



भाषा

भाषा का जन्म इसलिए हुआ है शायद
कि हम अपनी
चतुराई, धूर्तता और स्वार्थ को
अप्रकट रख सकें
जब-जब हम भाषा का प्रयोग करते हैं
अपने आपको छलते हैं
अपने आपको दे देना तो
किसी भाषा की दरकार नहीं रखता
अफसोस !
प्यार अपनी जेब में कोई इश्तहार
नहीं रखता ।
*
शब्दों का प्रयोग
लाता हो भले ही आदमी को आदमी के पास
पर दिल को ले जाता है
दिल में बहुत दूर
जहां शब्द बन जाते हैं बाट
और व्यवहार तराजू
यहां आदमी चाह कर भी
कहां खुलता है
सुबह से शाम तक
सिर्फ दूसरों की मर्जी के कांटे पर
तुलता है ।

□

## फूल बनता हुआ मौसम

फूल बनते हुए मौसम को देखा है तुमने ?
अवगुणनवती कलियो के आगन मे
किस तरह चुपचाप एक यायावर की
निरीहता ओढे
क्षण सत्य सा प्रकट
और वाधक्य सा अप्रकट
उपस्थित होता है वह ।
जीवन की सारी
व्यावहारिक चतुराई को धराशायी करता
वह खिलखिलाता है ।
एक अकृपण अट्टहास
दिद् दिगन्त मे व्यापता है
सारे ज्योतिवलय टूट कर
निछावर होते हैं जब
वह अपना रथ रोक देता है
किसी भी अख्यात दरवाजे पर
हवाए सास साधे
देखना चाहती है
किसी अघटित को घटित होते'।



## आँखें दो

तुम दे सकते हो मुझे अपने
सारे स्वप्न
किन्तु मांगूँ नहीं
क्या तब मेरे लिए था
स्वप्नों का यह पथ
रह जायेगा जो
तुम्हारे लिए है
यही तो सबसे बड़ी दिक्कत है
आदमी "सब कुछ" दे सकता है
मगर "कुछ" नहीं
जबकि यह "कुछ"
'सब कुछ' से ज्यादा
महत्वपूर्ण होता है।
इसीलिए नहीं मांगे मैंने
तुमसे तुम्हारे स्वप्न
वे निरर्थक हैं मेरे लिए
अगर दे सकते हो तो मुझे
अपनी आँखें दो।
ज्यादा सार्थक स्वप्नों का
सम्बन्ध द्रष्टा की
आँखों से होता है।

□

## तीसरा आदमी

इस कमरे मे मैं और तुम
दो हो तो हैं
पर यह कौनसी गध है जो
हमे सोने नही देती
यह तीसरे आदमी की गध है
तीसरा आदमी
जहा भी होता है वहा
मैं-तुम गौण हो जाते हैं
यह तीसरा आदमी
राजे-महाराजो के जमाने मे भी था
और आज भी है
सिर्फ उसका लिबास
और आवाज बदल गई है
लिबास और आवाज
बदलने से आदमी कहा बदलता है ?
भोले है वे लोग जो
समझते हैं कि
उनके बीच कोई नही
सच तो यह है कि तीसरा आदमी
सर्वव्यापी है
हमारे पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म
कर्म-कुकर्म सबमे एक सा
और हम इसकी मौजूदगी से
बेखबर चीजो को
नितान्त वैयक्तिक समझ लेते हैं। □

## वसन्त और त्योहार फूल

(अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के सन्दर्भ में विज्ञापन कागजों पर लिखी गई रचना)

फिर बसन्त आ गया
लाल, पीले, हरे, नीले
रिबन बाँधे
बस्तों को घर बाँधे
सड़कों पर जगह-जगह
झुंड-झुंड खड़े फूल
प्रतीक्षा में उस बस की
पहुँचायेगी जो इन्हें स्कूल ।
दाँत किटकिटाने वाली सर्दी
छिप गई बैंगनी पहाड़ों के पीछे
ओवर कोट पापा का
गरम शाल मम्मी का
टिंकू का स्वेटर
उषा का दुबके
सन्दूक में सबके नीचे ।
निकल आई हैं तितलियाँ
रंग-बिरंगी
छोटी-बड़ी
छुप-छुपी गई थी
सुन्दर और उजली
इधर-उधर
यहाँ से वहाँ तक

तैर रही गंध के सरोवर में
हसमुखी नौका
फूलो के पतवार
हिलते हैं लगातार
हिल-हिल कर कहते हैं-
बडा मजा आ गया
लो वसन्त आ गया ।

*

लेकिन कुछ और फूल
जो नही सडक पर हैं
घर की ही चौखट मे कैद
अपने ही मोहल्ले के
सुनीता-जावेद
इनके लिए तितलियो के पखों का रंग नहीं
इनके लिए मौसमी उमग नही
इनके लिए होली की पिचकारी बेमानी
इनके लिए खुशियो की बात बडी बचकानी
जीते हैं ये उदास जिन्दगी
अपने से ऊबे हुए, अपने मे डूबे हुए
इन्तजारते होगे ये भी मन ही मन
किसी स्कूल बस को
या वसन्त को ।
फैली है इर्द-गिर्द
बेशुमार गन्दगी
गरीबी और अज्ञान की
पीढी से पीढी तक बन्दगी

फूलों का यह मरम
सुबह-सुबह
धूलों में तार-तार होकर
पोखर में धागा तक
धनसार बिखरा गया
या बसन्त आ गया

•

'क्यों फूल होते हैं।'
फूलों की चर्चा में
पढ़ा कहीं यह वाक्य
अनायास मुझे याद आ गया
मन में अवसाद सा गहरा गया
फूल क्यों कैसे हो सकते हैं ?
फूल बीमार नहीं होते !
फूल लाचार नहीं होते !
अगर किसी उपवन का गुलाब गूंगा हो
गुलमुहर बहरा हो
सूरज मुखी अन्धा हो
अमलतास गंजा हो
चमेली लूली हो
चम्पा हकलानी हो
जूही कुबड़ी हो
रातरानी को लकवा
मोगरे को अनिद्रा हो
तुम्हीं कहो—
इन लाचार फूलों को क्या कहें

बेचारा वसन्त क्या करने आएगा
तब क्या मेरा यह उपवन
गधो की गंगा से वंचित रह जाएगा ?
मन को समझाता हूं
अपने इस प्रश्न का उत्तर पा जाता हूं
निश्चय ही बच्चे फूल होते हैं
और फूल बीमार भी होते हैं
फूल लाचार भी होते हैं
पर यह भी उतना ही सच है
फूल ही पतवार भी होते हैं
मौसम की
हंसमुखी नौका को
वे ही खे सकते है
धूप धुनी रुई का
गरमाहट-मरमावट-उजलाहट
वे ही दे सकते है ।
*
इसी, हां, इसी धरती पर
होते ही आये हैं भगीरथ
जो अपने यत्नो से
स्वर्गोन्मुख गंगा को
धरती पर बहना सिखलाते है
पीढ़ी के पापो को
पल मे धो जाते हैं
फ्रास की धरती पर ऐसा ही भगीरथ
हुआ था एक-लुई ब्रेल

जिसने करोड़ों बच्चे
सूर्य मुखी फूलों को आँखें दीं
चिड़िया से पिंजरे में बन्द
जिज्ञासा-प्रसार का योग दीं
नाद को सुना आकाश दे दिया
बच्ची-बच्ची दृष्टि को एक नया
विस्तार दिया
हममें से कई लोग
ऐसे भगीरथ हैं
सूखे गुलाबों को दे सकते जो पानी
बहर गुलमुहरों को बचपन वाली मनमानी
बच्चों की छटपटाहट हर सकते
लगड़ाती चांदनी को
पैरों पर खड़ा हम कर सकते।
"बस यह। उपवन का
कोई भी फूल नहीं रोएगा
रिक्तता के आंसुओं से
मुंह नहीं भिगाएगा"
यह संकल्प आया है
आगे भी आएँगे
नन्हों की सेनाएँ
उत्सव से पूरा है
बराबर बांट जाएँगे।

□

## एक उदास फूल की दिनचर्या

मुझे तोडने के लिए उसका हाथ
बढा ही था कि
बन्दूकधारी चौकीदार ने
उसे घुड़क दिया
वह रुग्रासी मुद्रा लिए काफी देर तक
मुझे प्यार भरी नजरो से
देखता रहा
फिर उसमे वह कहा गया
जो शब्द नही एक वार था
जिसने एक झटके मे हम
दोनो को अलग-अलग
कर दिया
और वह बेहद मायूसी के हाथ
अपना स्कूली बस्ता सभाले
सडक पर बढ गया ।

*

कुछ देर बाद बूढे बागवान का
मैला और खुरदरा हाथ
मेरे जिस्म पर गडा
गिरफ्त बढती गई
आखिर क्षण का वह हिस्सा भी
आया जब मैं
डाल से अलग कर दिया गया
माली के झोले मे मुझ जैसे

ग्रौर कई अभागे
पहले से कुनमुना रहे थे
उसने हम सबको एक साथ
बाध कर अधिकारी के
स्वागत-कक्ष की टेबल पर
पटक दिया ।
अधिकारी ठीक साढे दस बजे निकला
ग्रौर उचटती निगाह
स्वागत-कक्ष मे डालते हुए
अपनी कार मे बैठ गया
(क्या इसी दृष्टि के लिए
मेरे जन्म की सार्थकता थी ?)
मैं पडा रहा निरुद्देश्य
अनचाही सन्तति की तरह ।
*
सध्या से फिर स्वागत-कक्ष
बतियाने लगा
किसी को इतनी फुरसत नही थी
कि मेरी तरफ ध्यान देता
सबके ध्यान पहले ही बटे हुए थे
परमिट, ठेके, प्रमोशन, ट्रान्सफर
ग्रौर नियुक्ति मे ।
एक शूद्र युवक भी
इन मिलने वालो मे था
वह अधिकारी से ऊचे स्वर मे
दलित वर्ग के उत्थान की

बात कर रहा था और उसकी
अंगुलियां मुझे नोच रही थी ।

*

अब मैं अधनुचा पड़ा हूं
फर्श पर अगली सुबह की प्रतीक्षा में
जब नौकर मुझे
धूल, कागज की चिन्दियां,
सिगरेट के टुकड़ो, आलपिनो
और ऐसी ही तमाम चीजो के साथ
बुहार कर कचरा पात्र मे डाल देगा ।
फिर भी मैं प्रतीक्षा करूंगा उस बच्चे की
जिसे सुबह-सुबह
चौकीदार ने घुड़क दिया था
मेरे और अपने बेहतर (?)
भविष्य के लिए ।

□

## पहाड़पन

(अतर्राष्ट्रीय विकलाग वर्ष के सदर्भ मे)

इस पहाड का सिर
उस पहाड के पैर
उस पहाड की भुजाए
और उस पहाड की आखें
छीन ली हैं प्रकृति ने ।
मगर अब भी काली घटाओ को
पगडी की तरह
बाध लेते हैं पहाड
उद्दाम वेग की जलधारा को
ठोकर से लौटा देते हैं पहाड
आधियो को
सतोलिये की गेंद जसा
उछालते हैं पहाड
और बिना आख के देख लेते हैं
मिट्टी के गर्भ मे अकुरता बीज ।
सही है कि पहाड का
सिर, पैर, भुजाए और आखें
छीन ली गई हैं, पर
पहाड का पहाडपन कौन
छीन सकता है
इसीलिए हर साझ
सूरज इनका हाल पूछ कर डूबता है
हर सुबह
इन्हे प्रणाम कर उगता है । 

## शब्द-गेय

### एक

मित्र मेरे मैं तुम्हें कैसे बताऊ
शब्द की भी अपनी एक देह होती है,
एक अपना प्राण होता है।
शब्द से कट कर जगत क्या है—
अजूबा है आकारो का
शब्द यदि भर जायें तो
सम्ब ध क्या, बस—
खोखलापन है नगारो का
शब्द से ही वायु का सचार है
शब्द ही तो अग्नि का सभार है
शब्द ही तो तेज रवि का
शब्द शशि की शीतता
शब्द नभ की उच्चता है
शब्द भू प्रभ-विष्णुता
शब्द जल की आद्रता है
शब्द गिरि दुगम्यता है
शब्द सागर गहनता है
शब्द से ही सहज मे
पाषाण तक भगवान होता है

### दो

शब्द है आकल्प तन का
शब्द है सकल्प मन का

शब्द है तो मनुज है
शब्द ही प्रारुप जीवन का
शब्द है तो नियति के व्यापार हैं
शब्द है तो प्रवह लोकाचार है
शब्द है तो कला भी है
जिन्दगी का जलजला है
शब्द-शर यदि कर्म-प्रत्यचा चढे तो कीर्ति है
आचरण पर शब्द हो आरुढ तो वह नीति है,
शब्द से ही अ धेरो का अन्त होता है
शब्द से ही सूर्य का आव्हान होता है

## तीन

शब्द-गधी हवाए जब
नवकली के कर्ण कुहरो में अकहनी क्या कहती
लाज सी आरक्त प्राची की अरुणिमा
तरु वेणियो मे फूल जैसा
स्वप्न कोई टाक देती
ताल पर ता-ता, तीर पर थई-थई
कमल-वन से घिरी कोई हसिनी
निमल सुकोमल दृष्टि से
अपने विगत मे झाक लेती
काई जमी इन सगमरमर सिढियो पर
बैठ कर कोई नवोढा लरजती सी
शब्द अगुलि अमल जल पत्र पर
प्रिय नाम का ही प्रथम अक्षर आँक देती
और फिर भर नीर अजुरि मे न जाने
कौनसी नि शब्द भाषा मे अदेखे

आराध्य को निज समर्पण निर्वाक देती
कौन जाने यह अनोखी शब्द–पाती
विकल प्रिय तक पहुँच पाती या नही
पर इस तरह की पातियो का शब्द यात्रा मे
निराला स्थान होता है ।

## चार

रक्त बनकर शब्द बहता है
शहर की धमनियो मे
चेतना का तूय बनकर मुखरता है
कारखानो–चिमनियो मे
शब्द से ही पख लग जाते सडक के
भागती है गति स्वय गन्तव्य को जैसे फडक के
शब्द बनकर बीज खेतो मे विकसते हैं
शब्द ही बनकर धु आ
लता–मण्डित छतो से छनकर निकलते हैं
मचानो पर शब्द गोफन से किसी को टेरते हैं
गाव की चौपाल पर ये शब्द ही तो हेरते हैं
शब्द हैं तो चर–अचर मे सेतु हैं
शब्द हैं तो स्पन्दनो का हेतु है
शब्द ही तो प्राथना है, शब्द ही तो याचना है
शब्द ही तो वासना है, शब्द ही आराधना है

## पाँच

रात जब सुरमई नजर से देखती है
शब्द जीवन को
सह न पाता शब्द बेचारा कभी
इस शोरव चितवन को

सहमता है, सकुचता है, किन्तु फिर भी हारता कब है ?
मा ध्वनि की गोद मे पल भर दुबक कर
अस्तित्व को नव–आयाम देता है
यही वह क्षण है जहा पर स्थूल देही शब्द को
निज सूक्ष्म अपना रूप धरती है
यही वह क्षण है जहा पर
कामना निज काम्य वरती है
इन क्षणो मे शब्द तो होता नही पर
शब्द का आभास होता है
जिस तरह से मधुकणो की क्रोड मे
मधुमास सोता है
एक सन्नाटा यहा से वहा तक जो डोलता है
कौन जाने कौनसी शब्दावली वह बोलता है
गूढ जिसका अर्थ, जिसकी गूढतम व्याख्या
पढ न पाते ज्ञ नचक्षु यह जटिल आख्या
पर हृदय की आख जिनकी खुल गई है
जानते हैं वे कि ये भी शब्द हैं
अनागत नव–सृष्टि के प्रारब्ध हैं
इस तरह का मौन ही तो शब्द का
परिधान होता है।
मित्र मेरे मैं तुम्हे कैसे बताऊ
शब्द की भी एक अपनी देह होती है
एक अपना प्राण होता है।



## शस्त्र-गाथा

सिकलीगर ने एक शस्त्र बनाया था
कई दिनो तक धार देता रहा वह उसे
अपने ललाट पर चुहचुहा आये
पसीने को एक तरफ झटक कर
सूरज की तपिश
शान की चिनगारियां
और आतो मे कसमसाती
भूख को दबाये हुए ।
उसका स्वप्न अपराजेय तीक्ष्ण धार थी
उसका सत्य वह तलवार थी
तलवार की मूठ पर उसने
बेल बूटे उकेरे
उसे सुगढ आकार दिया
उसके एक तरफ तराजू
और दूसरी तरफ आख भी
अंकित कर दी उसने ।
*
सिकलीगर बेचारे का
विश्वास था कि उसने
तलवार की धार को दृष्टि दे दी है
न्याय-बुद्धि दे दी है
फिर कई दिनो तक खप कर
उसने एक मखमली म्यान भी
तैयार कर दी तलवार के लिए ।

जो देखता,
बस देखता ही रह जाता
क्या मूठ, क्या म्यान और क्या तलवार
म्यान बनाकर सिकलीगर
अंधा ही निश्चिन्त हो गया
जैसे लोग प्राय: मकान
बना कर छा जाते हैं ।
इसी बेखबर अवस्था में
यह तलवार
एक दिन चुपचाप
घुस गई सिकलीगर के
कलेजे में ।
•
सिकलीगर ने अन्तिम सांस
लेते हुए पूछा—"कम्बख्त !
यह मेरे किस गुनाह की दी है सजा ?"
तलवार मुस्करा दी
उदास से बोली—
तुम म्यान बनाते हो
और म्यान की बात करते हो ?
धार का काम है काटना
सब को दो में काटना
यह जो तुम्हारी ढाल और तराजू
इनका बोझ अब
मुझसे नहीं झिलेगा
इसके न रहने से मुझे भी
कुछ नहीं दिखा ।।

लोगों ने देखा
सिकलीगर की खुली हथेली पर
श्राख और तराजू पडे थे
और गाढे रक्त की एक रेखा
दूर तक जाकर सूख गई थी
ईश्वर ही जानता है इस हादसे मे
सिकलीगर और तलवार मे से
किसको बुद्धि चूक गई थी ?
यह बहुत पुरानी गाथा है
तब से अब तक तलवार
लगातार अपने काम मे मगन है
और सिकलीगर का हाथ
तराजू और श्राख के साथ
जाने इतिहास के कितने वजन
के नीचे दफन् है ।

□

## गणतन्त्र-दिवस

कच्चे ग्रागन उकडू बैठा
सूरज फटी-फटी ग्राखो से देख रहा है
जन पथ पर पावो का रेला
धक्कम धुक्का ठेलम ठेला
रग बिरगी पोशाको का
लगा हुग्रा है जैसे मेला
किससे पूछे कौन बताये
ग्राज कौनसा पर्व मनाने
इतनी सारी पोशाकें भागी जाती हैं
पोशाकें ही पोशाकें है।
इन्हे पहनने वाले
जाने किस खन्दक मे दुबक गये हैं
भाग रहे हैं जूते-चप्पल
सचमुच बहुत विवश है
ग्रौर ग्राज गणतन्त्र दिवस है।
*
सूरज का कच्चा ग्रागन
थरथरा उठा लो
तोपें दागी गई
पास के जन-ग्ररण्य मे
कलफ लगी हिमश्वेत बाह ने
डोरी खीची
कैद पताका मुक्त हो गई
कुछ हाथो ने ताली पीटी
किसी ग्रौर ने मारी सीटी

बूढी देह जवान हो गई
तनकर तीर कमान हो गई
बाजे की धुन पर उठ कर फिर
पैर थम गए
एक कड़कती कठनली के बोल
हवा मे बिखर रम गए
समारोह का कितना यश है ।
और आज गणतन्त्र दिवस है ।

*

बचपन झपटा एक जलेबी के दोने पर
यौवन खुश था नयनो के जादू टोने पर
किसी तरह लावारिस नारो को
कुछ अधिकार मिल गए
नाविक झगडा किये तीर पर
नौका को पतवार मिल गए
बिन नाविक के नौका चलती
ऐसा यहा करिश्मा देखा
बिन आखो के सब कुछ देखे
ऐसा हमने चश्मा देखा
दिखलाया सूरज को भी तो
रहा बिचारा हक्का-बक्का
फिर हमसे धीरे यू बोला—
यह सब चलता होगा शायद नारो से
इन नारो मे सुर्ख अनारो से
होता दुगना ही रस है
और आज गणतन्त्र दिवस है। □

## पराजय का सत्य

मैं एक हारा हुआ आदमी हू
जो हर बार जीत का अभिनय करता हू
और फिर-फिर हारा हुआ
करार दे दिया जाता हू।
आहत होता है जब-जब
मेरा स्वाभिमान
मुझे गुलमोहर के सुर्ख फूल
याद आते हैं
जो अपनी खुशी से खिलते हैं
और झड जाते है
मैं झड भी तो नही सकता
क्योकि जानता हू
मेरी ही धरती मेरा बोझ
बर्दाश्त नही करेगी
मुझे बार-बार आकाश की ओर
उछालती रहेगी
वह इन दिनो बगावत पर आमादा है।
*
धरती जब-जब बगावत करती है
फूलो को
न हसने का अधिकार रहता है
न रोने का
वे बस, आश्चर्य कर सकते हैं
हवाओ के अनमनेपन पर

या धरती के मातृत्वहीन आवेश पर।
मगर हारे हुए आदमी का न कोई
वेश होता है न आवेश।
मैं अपनी ही आत्मा के सामने
बेहयाई ओढे खुद को नंगा पाता हू
और अपनी हथेलियों मे
चेहरा छिपा लेता हू
अन्त मे मुझे रेल की चिलचलाती
पटरिया और
गुलमोहर के लालफूल एक साथ
याद आते हैं।



## पिता का स्मरण

मैं जब बहुत छोटा था
तुम्हारी अंगुली पकड़ कर चलता था
एक दिन तुम्हारा साथ
छूट गया था
और मैं चौराहे पर खो गया
तब मैं चीख-चीख कर रोया था
मुझे अच्छी तरह याद है
जब तुम दुबारा मिले तो
तुम्हारी आंखों मे आंसू थे ।

*

मैं अब बहुत बडा हो गया हू
चार बच्चो का पिता
लेकिन फिर मैं चौराहे की
उसी भीड मे खो गया हू
विवशता यह है कि आज मैं
उस दिन की तरह
रो नही सकता
हर आने-जाने वाले की झुर्रियो मे
तुम्हारा चेहरा तलाशता हू
और पहले से ज्यादा
उदास हो जाता हू ।



## यज्ञ-कुण्डों की परम्परा में

काटे से ही कटेगा यह पहाड़
इसकी छाया में बैठकर
ऊंचाई और कठोरता का ज़िक्र भर
करने से हवाएं सदय नहीं-
हो जाएंगी हमारे लिए।
प्रयत्न हवाओं की दया पाने
के लिए नहीं, उन्हें परास्त
करने के लिए हों।
किसी भी देवता की स्तुति
भुरभुरी नहीं होती चट्टानें।
चट्टानों को काटने का
एक ही उपाय है-
कुदाल करो अपने हाड़।
*
हां, हां, रास्ता टेढ़ा और
भयानक है। कहीं कोई पेड़,
कोई सरोवर नहीं
जहां बैठकर सुस्ता लें
मगर यज्ञ-कुण्डों की परम्परा में
यह सत्र होता कहां है ?
एक अहर्निश ताप-तप और अग्नियात्रा
पग नहीं रुके तो
कलुष खुद-ब-खुद
गिरते हैं खाकर पछाड़।

न्धेरे की काली और खूखार जीभ
ौसम की ताजगी निगलने के लिए
पलपाती तो है
गर इससे फूलो की रगत पर कभी
हशत हावी हुई है ?
ालिया इसी नीम अन्धेरे मे हर रात
ुपचाप नए पत्तो की बढ़िया उगाकर
निश्चिन्त सोती हैं
ायद इसीलिए बडे तडके
ुल पडते हैं जिन्दगी के किवाड ।



## आखो की नावो पर

खरगोश धूप पर आओ कुछ
जही की कलिया ही उछाल लें
सूरज का हिरण पकड लाओ
थोडा गुलाल मल दें ।
धुएं की, धमनी की
कथनी की, करनी की
बातो मे वक्त जो गवाया है
कितना तो खोया है
कितना कम पाया है ।
ये सारे बहीखाते
दूब की नदी मे खगाल लें
किरणो के तिनके से
दांत फसे मैले अतीत को निकाल दें ।
चीर कर शिलाओं को
नकार कर बलाओं को
पहला यह फूल जो खिला
अनाम पौधे पर
इसकी अनगध गध
इसका अपरूप रूप
सासो की नावो पर
पाल सा सभाल लें
यात्रा में फिर सारे आमन्त्रण
फाइल से फाड़ कर
जेबो मे डाल दें ।



## नदी-मन

कितनी ही दुबल हो
नदी, नदी होती है
कुहासे की सघन परत से घिरी
प्रकाश की एक क्षीण रेख
दूर से दूर तक
लोग जिसे सकते हैं देख
भूमि पर पडी हुई तलवार
भले ही हो कितनी निरुपाय
तलवार ही होती है
मेरी समग्र पीडा यह है–
तुम नदी क्यो नही हुए
ओ मेरे पोखर मन !
बहुत कुछ पा लेने के लिये
हमने अपना कुछ खो दिया
भूमि खोदी उस आकाश के
लिये जो आभास भर है
सभावनाओ की जजीर
से लटके रहे तुम
लोग आए, तुम्हें छुआ
और चल दिये
तुम किसी को नही छू सके
यह टोकर बनने की सजा है
रास्ता बेहतर है

भले ही मंदिर का न होकर
मरघट का हो
मेरी समग्र पीडा यह है–
तुम रास्ता क्यो नही हुए
ओ मेरे टोकर मन !



## सौन्दर्य

तुम नही देख पाओगे
इस अतलान्त सागर तल की जमीन
जमीन जहा भी शुरु होती है
सौन्दर्य शुरू होता है
पर्वत की ऊंची चोटी हो जाना
कम महत्वपूर्ण नही है
पर जमीन की बात और है !



## अहसास

सलीब पर
आदमी कभी नही लटकता महरबान ।
लटकता है एक क्षण विशेष
जिसमे आदमी
अहसासता है कि वह आदमी है ।



## विभाजन

चाकू समूचे
शरीर को एक साथ नही काटता
उसकी तीक्ष्ण धार
पहले लक्ष्य करती है
समूचे शरीर में कोई अग विशेष
कातिल का सारा मोह
इसी अग के प्रति
और कत्ल होने वाले का
सारा वैराग्य भी यही केन्द्रित होता है ?
क्या अश की पूण से
कोई पृथक सत्ता है ?



## विवेक

धर्मग्रथ को आइने की तरह
मत पकडो
इसमे कोई चेहरा
नजर नही आएगा
अलबत्ता तुम्हारी पकड से
यह धर्मग्रथ
"धर्म ग्रथि" बन जाएगा ।



## समय

सम्बन्धो की सलवटें
समय | की गरम इस्तरी
के नीचे दब कर
सपाट हो गई है
कौन कहेगा अब कि
ये वस्त्र मेरे या तुम्हारे
या मारे माध्यम मे
किसी और के पहने हुए हैं ।



## दिवसान्त

हर सुबह यह होता है कि
ढकेल दिया जाता हू
एक अधी सुरग मे
जहा हाथ को हाथ नही सूझता
जहा किसी को कोई नही सूझता
मेरी सास
चलने लगती है धौंकनी की तरह
दूसरो का लोहा गरमाने के लिए
और साझ रहती है सिर्फ
पहले हाल पर शरमाने के लिए ।



## निवेदन

ग्रौर तुम चाहे मुझे कुछ भी दे दो
मगर (ईश्वर के लिए)
दो चीजें मत दो–
नारा ग्रौर उपदेश ।
नारे दो–डा कर
मेरी जबान ग्रमर झुक गयी है
ग्रौर उपदेश सुन–सुन कर
स्वयं कुछ सोचने की
ताकत चुक गयी है ।



## पुन

शस्त्रों पर लाइसेन्स
खत्म कर दो
ग्रब शास्त्रों पर शुरू करो
यह पाबन्दी ।
सच मानो,
ग्रादमी जरूरत से ज्यादा
सभ्य हो गया है
उ कुछ दिनों के लिए
फिर ग्रसभ्य हो जाने दो
किसी नई संस्कृति का
जन्म दिन
ग्रपने ग्रादिम उल्लास में
मनाने के लिए ।



## महाभारत

न कोई कौरव है न पाण्डव
न द्रोण न दुर्योधन
न अर्जुन न युधिष्ठिर
फिर भी हम सब लड़ रहे हैं
अपने-अपने महाभारत
कृष्ण की गीता अब
साथ नही देती हमारा
अपनी-अपनी गीता पढ़ रहे हैं-
कर्म को ताक पर
रख कर फल की
मूरत गढ़ रहे हैं ।



## यथार्थ

अब व्यर्थ है
उन्हे उपदेश देना
जो मचा रहे हैं सड़क पर हुड़दंग
ये अब कपड़े
क्यों पहनेंगे
जबकि उन्हाने
हम देख लिया है
निपट नंग-धड़ंग ।



## चेतावनी

आस्था अगर चन्दन-वन है
तो सावधान दोस्तो !
इसमें तीखे दंश वाले
विषधर भी हो सकते हैं
हो सकती है इसमें आग
की वह चिनगारी भी
जो समूचे वन को
जलाने की सामर्थ्य रखती है
याद रखने की बात
सिर्फ इतनी सी है—
कहीं इतिहास को आस्था
के नाम पर
राख से समझौता न करना पड़े ।



## कविता की शुरुआत

अगर मै अपने गले मे
मफलर की जगह काई साप लपेट कर
आपको कोई कविता सुनाऊ
तो आपकी दिलचस्पी साप मे होगी
या कविता मे ?
महाशय !
साप तो अभी भी मेरे गले मे लिपटा है
यह बात दूसरी है कि वह आपको
मफलर लग रहा है
सच तो यह है कि
आपकी दिलचस्पी न सांप मे है
न कविता मे, न मफलर मे ।
आपकी दिलचस्पी कविता
खत्म होने मे है ।
लीजिए, मैं इसे खत्म किये देता हू ।
मगर अफसोस यह है
कि जिस क्षण मे कविता
खत्म करूगा यह आपके भीतर
शुरू हो जाएगी ।
वस्तुत कविता कभी समाप्त नही होती

वह महज स्थानान्तरित होती है ।
अपने आपको टटोलिए
और ईमानदारी से बताइए कि
क्या अब कविता
आपके भीतर शुरू नहीं हो गई है ?



